यूरिया

जीवन से जहर तक का सफर

क्या यूरिया के दिन लद गए हैं? यह सवाल इसलिए क्योंकि जिस यूरिया ने कई गुणा पैदावार बढ़ाकर किसानों को गदगद किया, वही अब उन्हें खून के आंसू रुला रहा है। अब उपज कम हो रही है और जमीन के बंजर होने की शिकायतें भी बढ़ती जा रही हैं, इसलिए किसान यूरिया से तौबा करने लगे हैं। एक हालिया अध्ययन में पहली बार भारत में नाइट्रोजन की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है जो बताता है कि यूरिया के अत्यधिक इस्तेमाल ने नाइट्रोजन चक्र को बुरी तरह प्रभावित किया है। यह पर्यावरण और सेहत को भी नुकसान पहुंचा रहा है। अक्षित संगोमला और अनिल अश्विनी शर्मा ने यूरिया के तमाम पहलुओं की पड़ताल की

विकास चौधरी / सीएसई

120

से अधिक वैज्ञानिकों ने करीब 5 वर्षों की मेहनत के बाद भारत में नाइट्रोजन की स्थिति का मूल्यांकन “इंडियन नाइट्रोजन असेसमेंट” में किया है

6,610

किलोग्राम यूरिया का औसत इस्तेमाल एक भारतीय किसान पिछले पांच दशकों में कर चुका है क्योंकि यह सस्ता पड़ता है

67

प्रतिशत यूरिया मिट्टी, जल और पर्यावरण में पहुंच जाता है। करीब 33 प्रतिशत यूरिया का इस्तेमाल ही फसल कर पाती है

03

लाख टन नाइट्रस ऑक्साइड भारत के खेत छोड़ते हैं जो पर्यावरण में पहुंचकर वैश्विक तापमान में इजाफा करता है

"**इस बार** तो हमने अपने एक एकड़ के खेत में चार-चार बार यूरिया डाला। आप मानिए कि 200 किलो से अधिक का यूरिया खेतों में डाल दिया, लेकिन उपज पिछले साल से भी कम ही मिल पाई। अब यह यूरिया हमारे लिए जी का जंजाल बन गया है। खेतों में डालो तो मुसीबत है और न डालने का तो अब सवाल ही नहीं पैदा होता।" बिहार के बेगुसराय जिले के बखरी गांव के 82 साल के किसान नंदन पोद्दार की इस उलझन का इलाज फिलहाल किसी के पास नहीं है। यूरिया उनके खेतों का वह जीवन बन गया है जिसकी फसल जहर के रूप में कट रही है।

देश को कृषि के क्षेत्र में मजबूत बनाने के उद्देश्य से यूरिया का इस्तेमाल हरित क्रांति (1965-66) के बाद पूरे देश में किया गया। पोद्दार कहते हैं, "शुरुआती सालों में देश के कई इलाकों में इस यूरिया के बारे में किसानों को विधिवत जानकारी नहीं दी गई। बल्कि रात में खेतों में यूरिया की बोरी चुपचाप डाल दी जाती थी, इससे भी जब बात नहीं बनी तब गांव के सरपंच के माध्यम से यूरिया किसानों को अपने-अपने खेतों में उपयोग करने के लिए आग्रह किया गया।" सभी किसानों से सरकार ने 1966-67 के दौरान यूरिया का इस्तेमाल करने की लगातार चिरौरी की। उन्होंने बताया कि हमें ऐसा लगा था कि खेती से होने वाला नुकसान यूरिया के उपयोग से मुनाफे में बदल जाएगा। हुआ भी ऐसा ही। पैदावार बढ़ने से हम खुश थे। हालांकि शुरू में हम डर भी रहे थे कि यूरिया के इस्तेमाल से कहीं हमारी फसल ही चौपट न हो जाए। हमने डरते-डरते पहली बार 1967 में एक एकड़ में केवल चार किलो यूरिया डाला। जब फसल तैयार हुई तो हमें अपनी आंखों पर भरोसा नहीं हुआ। क्योंकि पहली बार हम देख रहे थे कि गेहूं की उपज हमें तीन गुना अधिक मिली।

पोद्दार ने बताया कि पहले हम इतने ही खेत में गोबर की खाद डाल कर चार कुंतल (400 किलो ग्राम) उपज लेते थे। अब हम देख रहे थे कि सीधे 1200 किलो से अधिक गेहूं की उपज मिली। हम सभी को यकीन नहीं हुआ कि यह कौन सा चमत्कार है। मेरे खेतों में बढ़ी पैदावार को देख गांव के अन्य किसानों ने भी अगले साल यानी 1968 में अपने-अपने खेतों में सहकारी समितियों से मिलने वाला यूरिया डाला और वे भी अपनी-अपनी फसल देखकर गदगद थे। आखिर तीन गुना ज्यादा फसल पाकर कौन किसान होगा जो खुशी से फूला नहीं समाएगा। देखते ही देखते यूरिया खेतों का नायक बन चुका था।

सरकार ने भी यूरिया के प्रचार में कसर नहीं छोड़ी थी। ऊपर से चला यह प्रचार नीचे तक जोर मारने लगा और किसान तो इसकी ऐसे तारीफ करने लगे जैसे अभी फिल्मी हीरो पेप्सी और कोला की करते हैं। इसकी वजह भी तो थी। भारतीय किसानों ने आफियत का दौर बहुत कम देखा है। आसमान और जमीन से निकलती उम्मीदों में झूलते थे। एक किसान को भला क्या चाहिए? उसकी खेतों की उपज उसके कुटुंब का पेट भरे। और जब खेतों की सामान्य उपज से तीन गुना ज्यादा मिलने लगा तो जैसे लगा कि देवी अण्णपूर्णा प्रसन्न हो गई।

नाइट्रोजन पौधों के लिए जरूरी होती है क्योंकि यह पौष्टिक तत्वों को प्रतिबंधक बनाता है। क्लोरोफिल और प्रोटीन सिंथेसिस के जरिए पौधे इससे भोजन तैयार करते हैं। प्राकृतिक रूप से यह जरूरी पौष्टिक तत्व मिट्टी में डाइएजोट्रोफ जीवाणु के जरिए मौजूद रहते हैं। ये दाल जैसे पौधों की जड़ों में उपस्थित होते हैं। लेकिन औद्योगिक क्रांति के बाद यह प्राकृतिक मौजूदगी पर्याप्त नहीं रही क्योंकि यह बढ़ती आबादी को भोजन उपलब्ध कराने में असमर्थ थी। इस कारण प्राकृतिक रूप से मौजूद नाइट्रोजन के पूरक के लिए कृत्रिम फर्टीलाइजर का

बिहार के बेगुसराय के सलौना गांव के 80 वर्षीय देवनंदन चौधरी के अनुसार, यूरिया के उपयोग से कुएं और तालाब का पानी पीने लायक नहीं रह गया है

आशुतोष

आविष्कार किया गया।

पोद्दार कहते हैं कि वह बिलकुल अजीब समय था। यूरिया डाला तो खेतों में जा रहा था लेकिन उपज का नशा हमें चढ़ रहा था। और हम इस नशे को बढ़ाते चले गए। हमने अगले साल (1969) अपने खेतों में यूरिया की मात्रा दोगुनी कर दी क्योंकि अब हमें यह महसूस होने लगा था कि जितना अधिक यूरिया डालेंगे, उतनी उपज अच्छी होगी। चार के स्थान पर इस बार हमने पूरे दस किलो यूरिया एक एकड़ के खेत में डाल दिया। उम्मीद के मुताबिक तीन से बढ़कर पांच गुना यानी 1200 के मुकाबले 2000 किलोग्राम गेहूं की उपज हमें मिली। देश में किसानों द्वारा 1975 के आसपास अपने-अपने खेतों में तीन से पांच गुना यूरिया डालना एक सामान्य सी बात बनकर रह गई थी। यह भी सही है कि उसी दर से उनका उत्पादन भी बढ़ रहा रहा था। लेकिन किसानों को इस बारे में सरकार की ओर से कोई अधिकृत जानकारी देने का कहीं दूर-दूर तक कोई कार्यक्रम नहीं था। इसका नतीजा यह हुआ कि किसान अपने खेतों में यूरिया का उपयोग लगातार बढ़ा रहा था।

उन्होंने बताया कि हम तो यह सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि जिस यूरिया को हम सोना समझ बैठे हैं, वह धीरे-धीरे हमारे खेतों को बंजर कर रहा है। 1985 से 1995 के बीच प्रति एकड़ 125 किलोग्राम यूरिया डाल कर उपज का दस से 12 गुना बढ़ाया। यहीं से हम नीचे उतरने लगे। खेती में पैदावार घटने लगी जबकि हम यूरिया की मात्रा साल दर साल बढ़ाते गए। 1997 में हमने 175 किलो यूरिया डाला और पाया क्या? वही बस दस गुना। यानी अब यूरिया बढ़ाने से खेतों की पैदावार नहीं बढ़ रही थी बल्कि घट रही थी।

1995 के बाद से पैदावार लगातार घट रही है। चालीस सालों से यूरिया के अंधाधुंध इस्तेमाल ने खेतों को बंजर कर दिया है। आखिर एक बार फिर से किसानों ने अपने खेतों में गोबर आदि की खाद डालनी शुरू की। इससे पैदावार तो नहीं बढ़ी लेकिन घटनी भी कम हुई। लेकिन 2010 तक आते-आते अब गोबर की खाद भी आसानी से नहीं उपलब्ध हो पा रही थी। आज के हालात ये हैं कि किसान एक एकड़ के खेत में 225 से 250 किलो यूरिया डालने से भी बाज नहीं आ रहे हैं। कारण कि हर हाल में वही 15-20 साल पहले की 12 गुना उपज की जो दरकार है। अब तमाम कोशिशें नाकाम साबित हो रही हैं। पोद्दार पुराने समय को याद करते हुए बताते हैं कि आज से 50 साल पहले हमारे देश के प्रधानमंत्री हमसे यूरिया इस्तेमाल करने की चिरौरी कर रही थे। आज पांच दशक के बाद जब हमारे खेत पूरी तरह से खत्म होने वाले हैं तो वर्तमान

यूरिया की लालसा

1960–61 से 2015–16 तक यूरिया की खपत कई गुणा बढ़ गई। अमेरिका और चीन के बाद यूरिया की खपत के मामले में भारत तीसरे स्थान पर है

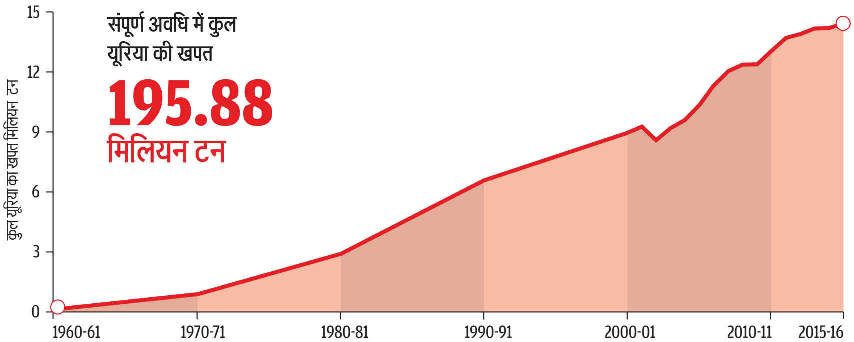

स्रोत: उर्वरक सांख्यिकी 2014–15, साठवां संस्करण, भारत के उर्वरक संघ, नई दिल्ली

प्रधानमंत्री हमसे (26 दिसंबर, 2017 को प्रसारित मन की बात में) अब यूरिया का कम से कम उपयोग करने की अपील कर रहे हैं। यही नहीं अब सरकार यूरिया पर सब्सिडी भी कम करती जा रही है। 2015-16 के बजट में यूरिया के लिए 72,438 करोड़ सब्सिडी रखी गई थी, जिसे 2016-17 के दौरान घटाकर 70,000 करोड़ रुपए कर दिया। पोद्दार ने एक अनुमान लगाते हुए बताया कि पिछले 50 सालों में हमने एक एकड़ के खेत में लगभग 6,610 किलो यूरिया का इस्तेमाल कर लगभग 5,337 कुंतल उपज (गेहूं व चावल) हासिल की।

नाइट्रोजन का आकलन

यह सिर्फ एक अकेले किसान नंदन पोद्दार की कहानी नहीं है। विडंबना है कि एक अकेला किसान पांच दशकों में 6,610 किलो ग्राम से अधिक यूरिया का इस्तेमाल कर चुका है। जबकि पूरे देश में अब तक 195.88 मिलियन टन यूरिया का इस्तेमाल कर चुका है। अब इससे नाइट्रोजन के दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। नाइट्रोजन प्रदूषण का आकलन भारत में पहली बार 120 से अधिक वैज्ञानिकों ने किया है।

इंडियन नाइट्रोजन ग्रुप में शामिल इन वैज्ञानिकों ने अपने आकलन में कहा है कि पिछले पांच दशकों से यूरिया के बेतहाशा इस्तेमाल से नाइट्रोजन प्रदूषण का फैलाव तेजी से हो रहा है। दरअसल, साल 2004 में भारत के स्वयंसेवी वैज्ञानिकों का समूह दो सवालों से जूझ रहा था। वे सवाल थे- मिट्टी और पर्यावरण में मौजूद नाइट्रोजन देश में पारिस्थितिकी को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है और यह कहां से आ रहा है। इन सवालों के जवाब के लिए उन्होंने खोज शुरू की। उन्होंने भारत में नाइट्रोजन के आकलन के लिए साल 2004 में सोसायटी फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर (एससीएन) की स्थापना की। आगे विचार विमर्श के बाद 2006 में एससीएन के अंग के रूप में इंडियन नाइट्रोजन ग्रुप (आईएनजी) की गठन किया। इसके तहत दस सालों में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले करीब 120 वैज्ञानिक जुड़ गए। नाइट्रोजन का स्रोत पता लगाने के लिए कृषि, बागवानी, मछली पालन, मुर्गीपालन और मवेशियों के अलावा उन्होंने भारत में तेजी से बढ़ रहे परिवहन क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित किया।

पिछले पांच सालों में बिना सरकारी मदद के उन्होंने गहन शोध किया और नतीजा "इंडियन नाइट्रोजन असेसमेंट" के प्रकाशन के रूप में सामने आया। अगस्त 2017 में इसे एल्सवियर ने प्रकाशित किया है। भारत में इस तरह का यह पहला मूल्यांकन

ब्लू बेबी सिंड्रोम

नाइट्रोजन प्रदूषण बच्चों के लिए खतरनाक

पीने के पानी में नाइट्रेट से छह महीने के तक बच्चों को ब्लू बेबी सिंड्रोम हो सकता है। इस बीमारी से ग्रसित बच्चों के खून में ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि नाइट्रेट हीमोग्लोबिन के प्रभाव को बाधित कर देता है। हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन का वाहक है। इससे बच्चों को बार-बार डायरिया हो सकता है। यह श्वसन क्रिया को भी बाधित करता है। यह स्कूली बच्चों में उच्च रक्तचाप और ब्लड प्रेशर भी बढ़ा देता है।

मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा ली

कृषि उपज बढ़ाने के लिए यूरिया का इस्तेमाल अब इतना बढ़ गया है कि इससे आम लोगों और पर्यावरण की सेहत पर बुरा असर पड़ने लगा है। भारत के तमाम राज्य इसका अंधाधुंध इस्तेमाल कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश इसमें अव्वल है

● अप्रैल 2015 से मार्च 2016 तक भारत के विभिन्न राज्यों में यूरिया की बिक्री (मीट्रिक टन में)

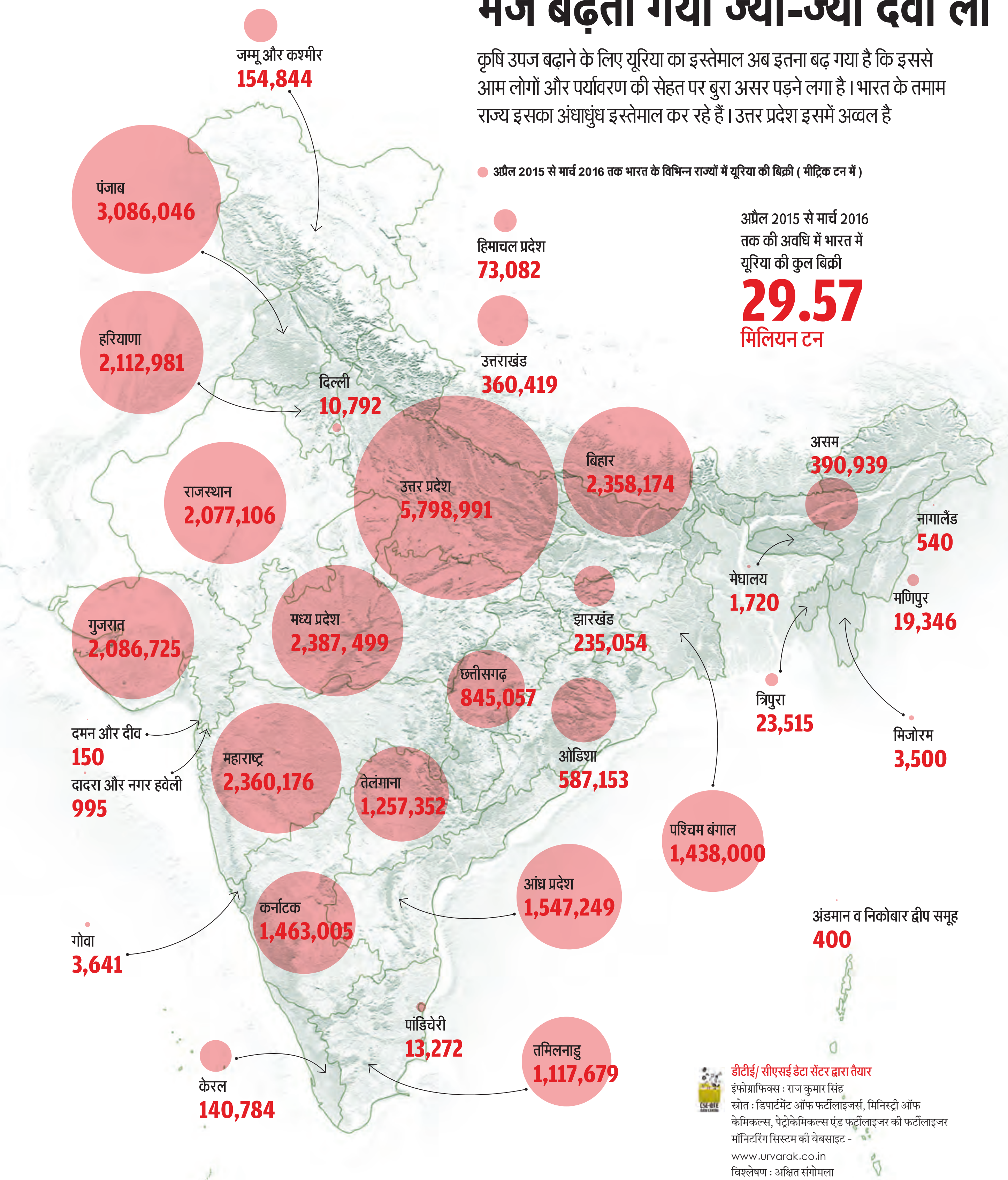

डीटीई/ सीएसई डेटा सेंटर द्वारा तैयार
इंफोग्राफिक्स : राज कुमार सिंह
स्रोत : डिपार्टमेंट ऑफ फर्टीलाइजर्स, मिनिस्ट्री ऑफ केमिकल्स, पेट्रोकेमिकल्स एंड फर्टीलाइजर की फर्टीलाइजर मॉनिटरिंग सिस्टम की वेबसाइट - www.urvarak.co.in
विश्लेषण : अक्षित संगोमला
अधिक इंफोग्राफिक्स के लिए जाएं
www.downtoearth.org.in/infographics

है। इसके निष्कर्षों में 30 रिव्यू पेपर्स शामिल हैं।

इसमें भारत में नाइट्रोजन की यात्रा का पूरा लेखा जोखा है। उत्सर्जन के विभिन्न स्रोतों से लेकर उन तमाम प्रक्रियाओं का जिक्र है जिससे यह पर्यावरण में पहुंचकर प्रदूषण का कारण बनता है। इसमें नाइट्रोजन को न्यूनतम करने के उपाय भी सम्मिलित हैं जो बताते हैं कि स्रोत में इस्तेमाल कम करके इसे काफी हद तक रोका जा सकता है। इसके प्रकाशन के साथ ही भारत अमेरिका और यूरोपीय संघ के बाद तीसरा ऐसा देश बन गया है जिसने अपने क्षेत्र में नाइट्रोजन का पर्यावरण पर प्रभाव का आकलन किया है।

मूल्यांकन बताता है कि भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण का अहम स्रोत कृषि है। इसका अधिकांश भाग नाइट्रोजन फर्टीलाइजर (उर्वरक) खासकर यूरिया के अत्यधिक इस्तेमाल से आता है। भारत में कृषि फसलों में यूरिया कृत्रिम फर्टीलाइजर का मुख्य स्रोत है। मूल्यांकन के अनुसार, देश में उत्पादित कुल नाइट्रोजन फर्टीलाइजर में इसकी हिस्सेदारी 84 प्रतिशत है।

भारत ने पिछले 60 सालों में यूरिया का अत्यधिक इस्तेमाल किया है जिससे कृषि उत्पादकता में कई गुणा बढ़ोतरी हुई है। 1960-61 में कुल नाइट्रोजन फर्टीलाइजर में यूरिया का अंश 10 प्रतिशत था जो 2015-16 में बढ़कर 82 प्रतिशत हो गया। फर्टीलाइजर असोसिएशन ऑफ इंडिया (एफएआई) के आंकड़ों के अनुसार, भारत हर साल 148 लाख टन यूरिया की खपत करता है। मूल्यांकन के अनुसार, यूरिया के इस्तेमाल की वजह इसका सस्ता होना है।

यूरिया के इस्तेमाल ने अब तक देश में खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने में योगदान दिया है। लेकिन इसने भारत को उलझन भरी परिस्थितियों में भी डाल दिया है। एक तरफ इसे यूरिया की जरूरत है क्योंकि किसानों को लगता है कि उनकी जमीन को यूरिया की आदत हो गई है। उन्हें यह भी डर है कि अगर रसायन का इस्तेमाल बंद कर देंगे तो उत्पादकता बेहद नीचे चली जाएगी। वहीं दूसरी तरफ इसका अत्यधिक इस्तेमाल पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है जिसे नियंत्रित करने की जरूरत है। इस संबंध में उत्तर प्रदेश के गुलिस्तानपुर गांव के 79 वर्षीय किसान सरबजीत सिंह चौहान ने बताया, "अब तो हमारी जमीन को यूरिया की ऐसी आदत पड़ गई है जैसे देशभर के लोगों को चाय की लत लगी हुई है।" यूरिया के बेतहाशा प्रयोग से देश में खाद्यान्न के मामले में तो देश आत्मनिर्भर हो गया लेकिन उसके बाशिंदों का शरीर कमजोर हो गया। इस संबंध में गौतमबुद्ध नगर के ममूरा गांव के धरमवीर सिंह बताते हैं, "यूरिया के अत्यधिक प्रयोग

विकास चौधरी / सीएसई

भारत ने पिछले 60 सालों में यूरिया का अत्यधिक इस्तेमाल किया है जिससे कृषि उत्पादकता में कई गुणा बढ़ोतरी हुई है

से खाद्यान्नों में पोटेशियम की मात्रा कम हो जाती है। पोटेशियम उच्च रक्तचाप को नियंत्रित रखने के साथ-साथ ह्दय को भी स्वस्थ रखता है। वह कहते हैं देशभर में रक्तचाप और ह्दय रोगियों कि संख्या में तेजी से बढ़ोतरी वास्तव में हरित क्रांति का ही परिणाम है। उनका कहना है कि इस क्रांति ने गेहूं-धान में तो आशातीत उत्पादन बढ़ाया लेकिन दलहन क्षेत्र इससे बुरी तरह से प्रभावित हुआ। जबकि हमारे देश में यह प्रोटीन का एक प्रमुख स्रोत है। इसकी कमी के कारण बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और ओडिशा में कुपोषण एक गंभीर समस्या बन गई है। कुपोषण के कारण क्षय रोगियों की संख्या में भी इजाफा हो रहा है।

कृषि में अनाज में इस्तेमाल होने वाला यूरिया सर्वाधिक प्रदूषण फैलाता है। भारत में चावल और गेहूं का सबसे अधिक उत्पादन किया जाता है। करीब 370 लाख हेक्टेयर में चावल और 261 लाख हेक्टेयर में गेहूं की पैदावार की जाती है। अतः ये सर्वाधिक 69.3 प्रतिशत नाइट्रोजन का उपभोग करते हैं। यूरिया के रूप में मौजूद 33 प्रतिशत नाइट्रोजन चावल और गेहूं के पौधे नाइट्रेट (NO_3) के रूप में प्रयोग करते हैं। इसे नाइट्रोजन यूज एफिशिएंसी अथवा एनयूई कहा जाता है। बाकी 67 प्रतिशत अंश मिट्टी में मौजूद रहता है और यह आसपास के वातावरण में पहुंच जाता है जो पर्यावरण और स्वास्थ्य पर असर डालता है।

नाइट्रोजन प्रदूषण के कई रूप हैं। नाइट्रेट के रूप में यह पानी को प्रदूषित करता है। यह नाइट्रेट जमीन की सतह पर घुल जाते हैं और पानी के बहाव के साथ झीलों, मछलियों के तालाबों, नदियों और अंततः समुद्र में पहुंचकर उसकी पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंचाते हैं। इससे जैव विविधता को भारी नुकसान पहुंचता है। उदाहरण के लिए भारत के तटीय क्षेत्रों में यह समुद्री घास, शैवालों और प्रवाल भित्तियों को क्षति पहुंचाता है। इस संबंध में मध्य प्रदेश के भोपाल से साठ किलोमीटर दूर रासलाखेड़ी गांव के 74 वर्षीय किसान अशफाक अहमद बताते हैं, "अब हमें शहद बाजार से खरीदना पड़ता है जबकि पहले हमारे खेतों के आसपास लगे पेड़ों में ही मधुमक्खी का छत्ता लगा होना आम बात थी, लेकिन इस यूरिया के कारण

सांस की बीमारियां

मवेशी छोड़ते हैं अमोनिया और नाइट्रस ऑक्साइड

मवेशी भारत में अमोनिया के सबसे बड़े उत्सर्जक हैं। कुल उत्सर्जन में मवेशियों का योगदान 79.7 प्रतिशत है। अमोनिया एरोसोल के जरिए वातावरण को प्रभावित करता है जो सांस संबंधी बीमारियों का कारक है। यह मिट्टी को अम्लीय बनाता है और उसकी उत्पादकता घटा देता है। मवेशी नाइट्रस ऑक्साइड का भी उत्सर्जन करते हैं जो वैश्विक जलवायु परिवर्तन में योगदान देता है। इसके कुल उत्सर्जन में मवेशी 70.4 प्रतिशत योगदान देते हैं। भारत में उत्तर प्रदेश सबसे ज्यादा अमोनिया (12.7 प्रतिशत) और नाइट्रस ऑक्साइड (13.1 प्रतिशत) छोड़ता है।

“जितनी जरूरत हो, फर्टीलाइजर का उतना इस्तेमाल सुनिश्चत करें”

इंटरनेशनल नाइट्रोजन इनीशिएटिव के अध्यक्ष **मार्क सतन** ने भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण की स्थिति पर *डाउन टू अर्थ* से बात की

दुनिया में वे कौन से हिस्से हैं जो नाइट्रोजन चक्र के टूटने के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील हैं?

दुनिया के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र इस गंभीर नाइट्रोजन चक्रण के टूटने की जद में हैं। यह उन देशों की समस्या है जो जीवाश्म ईंधनों पर अत्यधिक निर्भर हैं और जहां बड़े पैमाने पर खेती होती है। भारत और दक्षिण एशिया विशेष रूप से संवेदनशील हैं क्योंकि यहां आबादी और उपभोग की दर तेजी से बढ़ती जा रही है। एफएओ के अनुमान के मुताबिक, 2050 तक दक्षिण एशिया में उर्वरकों के इस्तेमाल की दर दुनिया में सबसे ज्यादा होगी। यह दक्षिण पूर्व एशिया से भी अधिक होगी। उत्सर्जन के पैमाने और पारिस्थितिकी की संवेदनशीलता पर यह निर्भर करता है। इस मामले में भी दक्षिण एशिया अहम है। हिमालय के जंगल और पहाड़ों पर नाइट्रोजन प्रदूषण के असर का खास अध्ययन नहीं हुआ है। इसके निचले हिस्से में गंगा का मैदानी इलाका है जो शायद नाइट्रोजन वायु प्रदूषण का वैश्विक केंद्र है। इन जंगलों का पारिस्थितिक तंत्र कुछ हद कर प्रभावित हो सकता है। उपमहाद्वीप के दूसरे छोर पर नाइट्रोजन चक्र के टूटने से प्रवाल भित्तियां अति संवेदनशील हैं।

भविष्य में विभिन्न पारिस्थितिकी जैसे समुद्र, झीलें व जंगल नाइट्रोजन प्रदूषण से कैसे दूषित होंगे?

एफएओ के अनुसार, दक्षिण एशिया में 2050 तक उर्वरकों का प्रयोग दोगुना हो जाएगा। जब तक इस प्रदूषण को रोकने का उपाय नहीं किया जाएगा, तब तक यह इन सभी तंत्रों को बिगाड़ने का काम करेगा। आशंका है कि समुद्रों में मृत तटीय क्षेत्र बढ़ जाएंगे, जो मछलियों को प्रभावित करेंगे। इसके साथ ही प्रवाल भित्तियों के अतिसंवेदनशील प्रवास के लिए भी खतरा बनेंगे। झीलों के साथ भी ऐसा देखा जाएगा। उनके शैवाल की बढ़ोतरी होगी। पीने के पानी की गुणवत्ता पर असर पड़ेगा और उसकी जैव विविधता भी प्रभावित होगी। जंगलों में वनस्पति और एपीफाइट्स पर असर होगा। एपीफाइट्स वे पौधे होते हैं जो किसी पेड़ पर उगते और जीवित रहते हैं। इनमें शैवाल, फर्न, काई और दूसरे पौधे शामिल हैं। वर्तमान में शैवाल इत्र के लिए उगाया जाता है। यह वातावरण में अत्यधिक नाइट्रोजन से प्रभावित हो सकता है। नाइट्रोजन का अत्यधिक प्रयोग मिट्टी को अम्लीय बना सकता है और उसमें जहरीले हेवी मेटल्स बढ़ा सकता है। इस कारण पीने के पानी की गुणवत्ता खराब हो सकती है। ये प्रभाव निश्चित रूप से हवा की गुणवत्ता को पार्टिकुलेट मैटर (पीएम) के सहयोग से और खराब कर सकते हैं। अमोनियम नाइट्रेट पार्टिकल इंसानी स्वास्थ्य को चुनौती देंगे। वहीं नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) और अन्य नाइट्रोजन क्रियाएं वैश्विक तापमान पर प्रभाव डालेंगी।

क्या नाइट्रोजन को नियंत्रित करके इसका वैश्विक चक्रण बहाल हो सकता है?

भारत और विकासशील देशों में हो रही तरक्की वैश्विक नाइट्रोजन चक्रण को बहाल करने के लिए अति महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में भारत दुनिया का प्रतिनिधित्व कर रहा है। हाल ही में इंडियन नाइट्रोजन असेसमेंट प्रकाशित की गई है, साथ ही भारत ने नीम कोटेट यूरिया नीति के लिए प्रतिबद्धता जता चुका है। इस तरह भारत दो क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा सकता है। पहला, दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में शामिल होने के कारण भारत में क्षमता है कि वह वैश्विक नाइट्रोजन चक्र पर असर डाल सकता है। दूसरा, भारत में इस मुद्दे का समर्थन करके नेतृत्व प्रदान कर सकता है। वह दूसरे को नाइट्रोजन के बेहतर प्रबंधन के लिए प्रोत्साहित कर सकता है।

अब मधुमक्खी फसलों के फूलों पर बैठती ही नहीं। इसके अलावा खेतों से केचुए व केकड़े आदि सब गायब हो गए हैं। यहां तक कि सालों हो गए हैं हमें अपने खेतों में रंग-बिरंगी तितली को उड़ते हुए देखे।” वह कहते हैं यह तो खेतों की बात हुई। यूरिया की अधिकता के कारण मेरे गांव के पास से बहने वाली पात्रा नदी से मछली तक गायब हो गई हैं। क्योंकि मानसून के समय हमारे खेतों से बारिश का पानी बहकर नदियों में ही जाता है और अपने साथ यूरिया भी बहा ले जाता है। इसके कारण इस नदी में अब मछलियां खत्म हो गई हैं।

23 शहरों में उच्च सघनता

मूल्यांकन में पाया गया है कि नाइट्रेट केवल सतह के पानी पर ही असर नहीं डाल रहा बल्कि इससे भूमिगत जल भी प्रदूषित हो रहा है। इस जल का मनुष्य के स्वास्थ्य से सीधा संबंध है। यह प्रदूषण पाचनक्रिया, हृदय-स्वसन पर प्रभाव, पेट के कैंसर और शिशुओं को ब्लू बेबी सिंड्रोम के रूप में प्रभावित करता है। मूल्यांकन के अनुसार, 21 राज्यों के 387 जिलों के भूमिगत जल में नाइट्रेट भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) द्वारा तय मानकों (45 मिलीग्राम प्रति लीटर) से अधिक है। यह भी पाया गया है कि 23 मेट्रोपोलिटन शहरों में नाइट्रोजन की उच्च सघनता है। जमशेदपुर में यह सबसे अधिक 450 मिलीग्राम प्रति लीटर है। बिहार के बेगुसराय के सलौना गांव के 80 वर्षीय देवनंदन चौधरी कहते हैं, “बीते दशकों में लगातार अत्यधिक मात्रा में यूरिया के उपयोग से हमारे कुएं और तालाब का पानी पीने लायक नहीं रह गया है।”

मूल्यांकन में एक अध्ययन के हवाले से कहा गया है कि पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कई हिस्सों में कुएं और बोरवेल के पानी में नाइट्रेट की सघनता विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा तय सीमा से अधिक है। कृषि सघनता वाले हरियाणा में यह सबसे बदतर है। यहां कुएं के पानी में नाइट्रेट की औसत मौजूदगी 99.5 मिलीग्राम प्रति लीटर है जबकि डब्ल्यूएचओ की निर्धारित सीमा 50 मिलीग्राम प्रति लीटर है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर के किसान अनिल चौधरी कहते हैं, “यह सही बात है कि यहां कुओं के पानी में नाइट्रेट की मात्रा बहुत अधिक हो गई है और इसके कारण लोग अब पूरी तरह से टेप वाटर पर निर्भर हो गए हैं।”

मिट्टी का स्वास्थ्य

नाइट्रोजन प्रदूषण मिट्टी के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है जिसके परिणामस्वरूप फसलों की पैदावार कम हो जाती है। फर्टीलाइजरों के अत्यधिक इस्तेमाल से जमीन अनुत्पादक हो जाती है। ऐसा

यूरिया का चक्र

यूरिया नाइट्रोजन का सबसे बड़ा स्रोत है। यह पर्यावरण में कई रूपों में मौजूद रहता है। मिट्टी, हवा और पानी में मिलकर सेहत और पारिस्थितिक तंत्र पर यह अपना प्रभाव डालता है

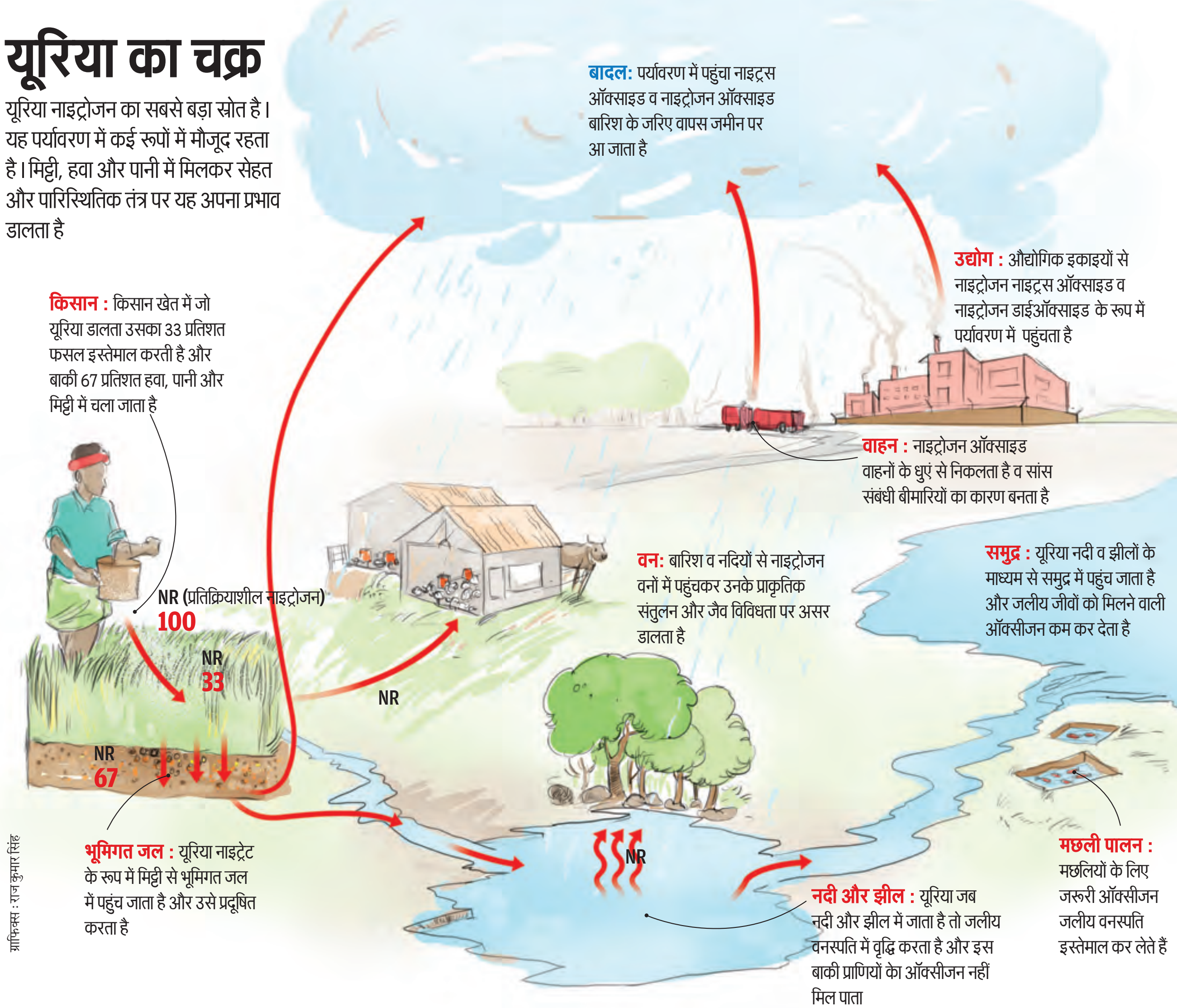

ग्राफिक्स : राज कुमार सिंह

इसलिए होता है क्योंकि मिट्टी से लंबे समय के लिए कार्बन मात्रा (कार्बन कंटेंट) घट जाती है जो इसके स्वास्थ्य पर असर डालती है। पोषक तत्वों और जैविक खाद को मद्देनजर रखते हुए फर्टीलाइजरों के उपयोग में संतुलन बनाना जरूरी है।

मूल्यांकन में एक अध्ययन के हवाले से कहा गया है कि रांची में नाइट्रोजन फर्टीलाइजर ने मिट्टी में कार्बन की मात्रा मूल मात्रा से 28 प्रतिशत तक कम कर दी है जबकि नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम और जैविक खाद ने संयुक्त रूप से खेत के कार्बन में 2.9 प्रतिशत की कमी कर दी है। इस संबंध में पाकिस्तान के सिंध से विस्थापित और अब राजस्थान के अनूपगढ़ के छयासीजी गांव के गुरुदेव सिंह कहते हैं, "यूरिया के लगातार उपयोग से हमारे खेतों की मिट्टी की उर्वराशक्ति पूरी तरह से खत्म हो गई है।

जलवायु परिवर्तन में योगदान

नाइट्रोजन का दुष्परिणाम केवल पानी और मिट्टी तक ही सीमित नहीं है। नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) के रूप में यह ग्रीन हाउस गैस भी है और वैश्विक जलवायु परिवर्तन में इसका बड़ा योगदान है। 2007 में इंडियन नेटवर्क फॉर क्लाइमेट चेंज असेसमेंट के अध्ययन के अनुसार, भारत में फर्टीलाइजरों का नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन में अहम योगदान है जबकि वाहनों से होने वाले प्रदूषण (55.53 गीगाग्राम या Gg)औद्योगिक और घरेलू सीवेज (15.81Gg) का भी ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ने में योगदान है।

एससीएन के मुख्य संरक्षक और संस्थापक यशपाल अबरोल ने *डाउन टू अर्थ* को बताया, "ग्रीनहाउस गैस के रूप में कार्बन डाई ऑक्साइड के मुकाबले नाइट्रस ऑक्साइड 300 गुणा अधिक प्रभावशाली है। उन्होंने कहा, "इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज और यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज द्वारा कार्बन पर बहुत बहसें हुई हैं, अब हमें नाइट्रस ऑक्साइड और नाइट्रोजन प्रदूषण पर बहुत ध्यान देने की जरूरत है। 2010 में भारत में कृषि से कुल नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन 1.4 लाख टन था। 1950 में सालाना उत्सर्जन 60 गीगाग्राम प्रति साल था जो 2010 में बढ़कर 300 गीगाग्राम प्रति साल हो गया है। नेचर *क्लाइमेट चेंज* जर्नल में प्रकाशित 2012 के शोधपत्र के अनुसार, इसके उलट विश्व का कृषि से वार्षिक उत्सर्जन 6400 गीगाग्राम है।

भारत के लिए दुर्भाग्य यह है कि कृषि, नाइट्रोजन प्रदूषण का केवल एक स्रोत है। मूल्यांकन प्रकाशित करने वाले आईएनजी के अध्यक्ष एन रघुराम बताते हैं, "सीवेज और जैविक ठोस कचरा

“नाइट्रोजन के गैर कृषि उद्गम पर रोक लगाने की जरूरत है”

इंडियन नाइट्रोजन ग्रुप के अध्यक्ष **एन रघुराम** ने भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण की स्थिति पर *डाउन टू अर्थ* से बात की

भारत का नाइट्रोजन प्रदूषण दुनिया से अलग कैसे है?

नाइट्रोजन प्रदूषण स्रोत के योगदान के हिसाब से अलग-अलग देशों में अलग हो सकता है। कृषि, घरेलू एवं निगमों के सीवेज से लेकर जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल, वाहन, उद्योग और पराली में आग आदि इसके स्रोत हो सकते हैं। नाइट्रोजन प्रदूषण के लिए सबसे बड़ा मानव निर्मित स्रोत खेतों का अप्रयुक्त फर्टीलाइजर है, चाहे वह मूलरूप से जैविक हो या रासायनिक। भारत में प्रिसिजन कृषि अवहनीय है और फर्टीलाइजरों के सटीक इस्तेमाल के लिए श्रम लागत अधिक है। अतः किसान फर्टीलाइजरों का अधिक इस्तेमाल करते हैं। लेकिन फसलें फर्टीलाइजरों का पूर्ण इस्तेमाल नहीं कर पातीं, इसलिए नाइट्रोजन प्रदूषण में उनका योगदान होता है। अधिकांश प्रदूषण अनाजों से होता है, जबकि दूसरे देशों जैसे चीन में बागवानी की फसलों और नगदी फसलों का सर्वाधिक योगदान होता है। यूरोप में यह चारे, मवेशियों और पशुपालन से अधिक प्रदूषण होता है। अफ्रीका का नकारात्मक योगदान है। इसका अर्थ है कि पर्याप्त मात्रा में रासायनिक फर्टीलाइजरों, खाद उपलब्ध न होने से किसान जमीन में जो नाइट्रोजन उपलब्ध है, उसका दोहन कर रहे हैं जिससे मिट्टी की गुणवत्ता कम हो रही है।

क्या हम खाद्य संरक्षण सुनिश्चित करने के साथ फर्टीलाइजरों के इस्तेमाल और नाइट्रोजन प्रदूषण के बीच तालमेल बिठा सकते हैं?

हां। भारत में खाद्य उत्पादन उस हिसाब से नहीं बढ़ रहा है जिस अनुपात में फर्टीलाइजरों का उपभोग हो रहा है। पिछले दो दशकों में अनाज के उत्पादन में नाइट्रोजन का योगदान कम हुआ है। अन्य कारकों पर ध्यान दिए बिना फर्टीलाइजरों का बढ़ता इस्तेमाल फसलों की कम उत्पादकता के रूप में ही देखने को मिलेगा। पर्यावरण को भी इसकी कीमत चुकानी होगी। सिंचित क्षेत्रों जहां एक साल में कई फसलें उगाई जाती हैं, वहां हमें नाइट्रोजन फर्टीलाइजरों के असंतुलित इस्तेमाल पर तर्कपूर्ण संतुलन की जरूरत है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी क्षेत्रों में जितना जरूरी है, उतना फर्टीलाइजर ही प्रयोग किया जाए, भले ही मानसून पर निर्भर भूमि पर फर्टीलाइजरों के इस्तेमाल में थोड़ा इजाफा करना पड़े। सबसे अहम बात, हमें नाइट्रोजन के गैर कृषि स्रोतों पर रोक लगाने की जरूरत है जो काफी तेज गति से प्रदूषण बढ़ा रहा है।

क्या भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण के कृषि स्रोत पर प्रतिबंध लगाकर वैश्विक नाइट्रोजन चक्रण पुनः स्थापित हो सकता है?

भारत के आकार को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय उत्सर्जन अमेरिका और चीन से काफी कम है लेकिन फिर भी विश्व में इसका अच्छा खासा योगदान है। मामूली प्रतिबंध वैश्विक चलन पर खास प्रभाव नहीं डालेंगे, लेकिन बड़े उपाय जरूर असर डाल सकते हैं। मसलन, हाल के दो नीतिगत निर्णयों को ही लीजिए। अनिवार्य किया गया है कि खुदरा बाजार में नीम कोटेड यूरिया ही यूरिया का एकमात्र स्रोत होगा। यूरिया के थैले का आकार भी दस प्रतिशत कम किया जा रहा है। एक ऐसे देश में जिसके खेत 3,00,000 टन नाइट्रस ऑक्साइड ग्रीनहाउस गैस छोड़ते हैं, वहां नीम कोटेड यूरिया और अन्य उपायों से इसे अधिकतम 1,00,000 टन पर सीमित किया जा सकता है। अगर ऐसा सच में हो पाया तो भारत वैश्विक उत्सर्जन में उल्लेखनीय सुधार कर सकता है।

भारत में नाइट्रोजन प्रदूषण का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत है। विकसित देशों में ऐसा नहीं है क्योंकि वहां सीवेज और ठोस कचरा प्रबंधन के बेहतर तंत्र ने इससे होने वाले प्रदूषण पर लगाम लगा दी है। बल्कि इनसे पोषक तत्वों की रिकवरी तक की जाती है जबकि भारत में यह स्रोत तेजी से बढ़ रहे हैं। फर्टीलाइजरों के मुकाबले इनकी वृद्धि दर चार गुणा अधिक है।” वह भारत में औद्योगिक और घरेलू सीवेज से नाइट्रोजन के पुनर्चक्रण पर जोर देते हैं और फर्टीलाइजर के रूप में इसे इस्तेमाल करने की वकालत करते हैं। उनके अनुसार, देश में इस तरह का अभ्यास करके 40 प्रतिशत फर्टीलाइजर की बचत की जा सकती है।

भारत का परिवहन क्षेत्र भी नाइट्रोजन प्रदूषण में अहम योगदान देता है। नाइट्रोजन ऑक्साइड (NOx) के रूप में यह वायु में प्रदूषण का मुख्य घटक है और यह सांस संबंधी बीमारियों की वजह बनता है। ओजोन के जरिए यह जलवायु परिवर्तन में परोक्ष रूप से योगदान देता है। वैश्विक ग्रीन हाउस प्रभाव के लिए यह 10-15 प्रतिशत जिम्मेदार है। भारत में वाहन अधिकतम 32 प्रतिशत नाइट्रोजन ऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं। इसमें सड़क यातायात का योगदान 28 प्रतिशत है। दिल्ली में सड़क परिवहन का योगदान 66 से 74 प्रतिशत है जो ठंड में स्मॉग के रूप में परिलक्षित होता है।

ऊर्जा क्षेत्र भी नाइट्रोजन ऑक्साइड और नाइट्रस ऑक्साइड के उत्सर्जन में अच्छा खासा योगदान देता है। 2010 में बिजली उत्पादन से सबसे अधिक 11.68 गीगाग्राम नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जित हुआ। यह इस क्षेत्र के कुल उत्सर्जन (12.06 Gg) में करीब 97 प्रतिशत है।

नाइट्रोजन सीमा से कई गुणा अधिक

यह भारतीय मूल्यांकन अहम है क्योंकि मनुष्य धरती पर नाइट्रोजन की सीमा को पार कर चुके हैं। साल 2009 में नेचर जर्नल में प्रकाशित शोध में जोहेन रॉकस्ट्रॉम ने विलियम स्टीफन के साथ पर्यावरण में पोषक तत्वों, उत्सर्जन एवं अन्य मानव निर्मित परिवर्तनों की सीमा को स्थापित किया था। इसके दायरे में रहकर मानवों की कई पीढ़ियां गुजर बसर कर सकती हैं।

वर्तमान में ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में सेवामुक्त पर्यावरण प्रोफेसर स्टीफन ने *डाउन टू अर्थ* को बताया, “नाइट्रोजन की सालाना सीमा 44 टेराग्राम (Tg) निर्धारित की थी। उन्होंने बताया कि मुख्य रूप से नाइट्रोजन का फर्टीलाइजर के रूप में इस्तेमाल करीब 150 टेराग्राम प्रति वर्ष है जो धरती की सीमा से तीन गुणा ज्यादा है। असल में फर्टीलाइजरों के माध्यम से वैश्विक स्तर

“70 के दशक में केंद्र ने यूरिया के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। उत्पादन में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। ऐसा लगा कि हम फसल उत्पादन में सबसे आगे होंगे। लेकिन, कुछ साल बाद इसके नकारात्मक प्रभाव सामने आने लगे। जमीन की उर्वरक शक्ति खत्म होने लगी। खाद के बगैर कुछ भी उगाना मुश्किल हो गया”

- सरबजीत सिंह, गुलिस्तापुर गांव,गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

“पैदावार बढ़ने से हम काफी खुश थे। कुछ साल बाद ही पता चल गया कि यह मीठा जहर है। आज स्थिति यह है कि हमारे जमाने में जिस खेत से अच्छी पैदावार होती थी, आज उस खेत में फसल लगाना घाटे का सौदा हो गया है। एक तरह से कहें तो यूरिया का इस्तेमाल कर हमने अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है।”

- गुलाब सिंह, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश

पर कृत्रिम नाइट्रोजन बायलॉजिकल नाइट्रोजन फिक्सेसन (बीएनएफ) से अधिक हो गया है। भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान से जुड़े एवं मूल्यांकन में योगदान देने वाले डीएलएन राव कहते हैं, “बीएनएफ और फर्टीलाइजर का वैश्विक अनुपात करीब 1.4:1 होगा।

केमिकल फर्टीलाइजर बीएनएफ को पीछे छोड़कर करीब 40 प्रतिशत अधिक हो गए हैं।” उन्होंने आगे कहा, “कुछ साल पहले तक यह और अधिक था, विकसित देशों में इसमें कुछ गिरावट हुई है क्योंकि उन देशों ने नाइट्रोजन फर्टीलाइजरों की राशनिंग शुरू कर दी है।” अमेरिका ने साल 2012 में अपना नाइट्रोजन असेसमेंट तैयार किया था। इसने देश में नाइट्रोजन के प्रबंधन के लिए नीतियों में बदलाव का मार्ग प्रशस्त किया। उदाहरण के लिए नाइट्रोजन फर्टीलाइजरों के इस्तेमाल के लिए अमेरिका में तीन बेस्ट मैनेजमेंट प्रैक्टिसेस (BMPs)के सेट हैं। इसमें भुट्टे जैसी तमाम फसलों के लिए फर्टीलाइजरों के उपयोग की दर, टाइमिंग और तरीकों का ध्यान रखा गया है।

मूल्यांकन के अनुसार, दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में कृषि अर्थव्यवस्था की प्रकृति और आबादी की संस्कृति खासकर आहार के चलते नाइट्रोजन प्रदूषण के स्रोत अलग-अलग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए भारत में अनाज का उत्पादन का इसमें योगदान सबसे अधिक है, चीन में बागवानी पहले स्थान पर है जबकि यूरोपीय देशों में मीट और दूध के लिए मवेशियों का पालना सबसे ऊपर है।

क्या है उपाय

अपने विश्लेषण के आधार पर एससीएन का सुझाव है कि भारत ऐसी नीतियां बनाए जिससे उसका एनयूई बढ़ सके। ऐसा करके पर्यावरण, मनुष्यों के स्वास्थ्य और जलवायु परिवर्तन पर नाइट्रोजन प्रदूषण के असर को कम किया जा सकता है। नाइट्रोजन का इस्तेमाल नियंत्रित करके इसे काफी कम किया जा सकता है। इससे भारत सरकार की ओर से फर्टीलाइजरों पर दी जाने वाले सब्सिडी का भार कम होगा।

1991 में अर्थव्यवस्था में उदारीकरण के बाद से अन्य फर्टीलाइजरों से सरकार ने अपना नियंत्रण

वाहनों का योगदान

सड़कों से नाइट्रोजन

भारत में परिवहन क्षेत्र नाइट्रोजन ऑक्साइड का सबसे बड़ा उत्सर्जक है। ये भी सांस संबंधी बीमारियों के कारण हैं। 2007 में सड़क परिवहन से इसका 86.8 प्रतिशत उत्सर्जन हुआ है। सड़क पर चलने वाले वाहन ट्रक और लॉरी से सबसे ज्यादा 39 प्रतिशत नाइट्रोजन ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है। भारतीय शहरों में चेन्नै सबसे ज्यादा नाइट्रोजन ऑक्साइड (353.67 मिलीग्राम प्रति वर्ग किलोमीटर) छोड़ता है। दूसरे नंबर पर बैंगलोर (323.75 मिलीग्राम प्रति वर्ग किलोमीटर) है। ये आंकड़े 2009 के हैं।

हटा लिया था लेकिन यूरिया जिसमें सबसे अधिक नाइट्रोजन होता है, उसे अब तक पूरी तरह नियंत्रित किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो सरकार इसके उत्पादन, आयात और वितरण पर नियंत्रण रखती है। सरकार किसानों को यूरिया खरीदने के लिए अनुदान भी देती है। यह अन्य फर्टीलाइजरों के मुकाबले सस्ता पड़ता है, इसलिए किसान इसका खुलकर इस्तेमाल करते हैं। इसका नतीजा यह निकलता है कि मिट्टी अन्य पोषक तत्वों से वंचित रह जाती है और इससे उसके स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ता है।

मूल्यांकन में पाया गया है कि संभावित विक्रय मूल्य 78.8 अमेरिकी डॉलर प्रति टन नाइट्रोजन फर्टीलाइजर के आधार पर नगद सब्सिडी करीब 7 बिलियन अमेरिकी डॉलर बनती है। इससे देश के करदाताओं पर भारी बोझ आ जाता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि भारत हर साल करीब 10 बिलियन अमेरिकी डॉलर के मूल्य के नाइट्रोजन का प्रयोग करता है। जबकि नाइट्रोजन प्रदूषण का स्वास्थ्य, पारिस्थतिकी और जलवायु पर पड़ने वाला भार प्रति वर्ष 75 बिलियन अमेरिकी डॉलर के बराबर है। उन्होंने यह भी पाया है कि अगर एनयूई में 20 प्रतिशत सुधार किया जाए तो वैश्विक स्तर पर हर साल करीब 170 बिलियन अमेरिकी डॉलर का लाभ होगा।

क्या भारत फर्टीलाइजरों के ज्यादा इस्तेमाल के जरिए खाद्य सुरक्षा और नाइट्रोजन प्रदूषण के दुष्परिणामों के बीच संतुलन स्थापित कर सकता है। जानकार हां में जवाब देते हैं। रघुराम बताते हैं

“साठ के दशक में यूरिया के इस्तेमाल शुरु हुआ। यह बड़ी व स्थायी समस्या की शुरुआत थी। किसानों ने खाद का इस्तेमाल खेत की उर्वरकता बढ़ाने के लिए शुरू किया पर उर्वरक ने खेतों की मिट्टी की गुणवत्ता ही खराब करनी शुरू कर दी। ज्यों-ज्यों समय बीता, पैदावार घटती चली गई और उर्वरक का उपयोग बढ़ता गया”

- छोटेलाल सिंह चौहान, ममूरा गांव, नोएडा

“70 के दौर में यूरिया ने किसानों को उर्वरक का रोगी बना दिया। कुछ सालों के बाद स्थिति बदली तो उन्होंने फैसला किया कि अब उर्वरक का इस्तेमाल अपने खेतों में नहीं करेंगे। वजह, खेतों में उत्पादन अपेक्षाकृत कम हो गया। हमने उर्वरक का उपयोग न करने का फैसला किया है। अब हमें बात समझ आ गई है”

- धर्मवीर सिंह, सेक्टर-66, नोएडा

कि जिस गति से फर्टीलाइजरों का इस्तेमाल बढ़ रहा है, उस अनुपात में उत्पादन में इजाफा नहीं हो रहा। ऐसा इसलिए क्योंकि अन्य सीमित कारक भी हैं। वह कहते हैं, “सिंचाई व अन्य पोषक तत्वों में सुधार किए बिना अगर फर्टीलाइजरों को उपयोग बढ़ता रहता है तो फसलों की गुणवत्ता में गिरावट दर्ज होगी।”

स्टीफन कहते हैं, “हमें नाइट्रोजन और फास्फोरस फर्टीलाइजरों के कम प्रयोग से फसल उगाने के तरीके सीखने होंगे। ऐसा करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उपाय को प्रिसिजन एग्रीकल्चर (कृषि की ऐसी व्यवस्था जिसमें पौधों के लिए पोषण तत्वों को सही जरूरत के अनुसार इस्तेमाल किया जाए) कहा जाता है। इसमें पौधे की जरूरत को देखते हुए सही समय में नाइट्रोजन की सही मात्रा उपयोग में लाई जाती है। इससे जहां फर्टीलाइजर की बर्बादी नहीं होती, वहीं फसलों को भी नुकसान नहीं पहुंचता। इससे वैश्विक नाइट्रोजन का उपयोग कम होगा अथवा वह ग्रह की सीमा के भीतर रहेगा। लेकिन प्रिसिजन एग्रीकल्चर केवल कुछ स्थानों पर ही अपनाई जाती है। इसका विस्तार करने की जरूरत है।”

इंटरनेशनल नाइट्रोजन इनीशिएटिव के मार्क सतन कहते हैं, “नाइट्रोजन फर्टीलाइजरों के इस्तेमाल को कम करके और जैविक खाद के पुनर्चक्रण से भारतीय किसानों को सुरक्षित खाद्यान्न उत्पादन की बेहतर संभावना है। इससे लाभ भी होगा और सरकार की बड़ी धनराशि की भी बचत होगी। इस समय कार्बन और नाइट्रोजन की बचत करने वाले अभ्यासों पर भी बहुत ध्यान देने की जरूरत है। ऐसा करके बेहतर नाइट्रोजन प्रबंधन में मदद मिलेगी और मिट्टी की संरचना में सुधार किया जा सकता है। साथ ही सूखे में लचीलापन, मिट्टी के कटाव और अन्य जलवायु से संबंधित खतरों को कम किया जा सकता है।” उनके अनुसार, इन तरीकों को अपनाकर भारत वैश्विक नाइट्रोजन प्रबंधन के क्षेत्र में विश्व की अगुवाई कर सकता है। भारत आईएनजी के माध्यम से पहले से इस दिशा में काम कर रहा है जिसने मूल्यांकन प्रकाशित किया है और इंटरनेशनल नाइट्रोजन इनीशिएटिव में दक्षिण एशियाई अध्याय की अगुवाई की है।

रघुराम जोर देकर कहते हैं, “हमारी रिपोर्ट ने प्रमाणित किया है कि हमारे पास वह वैज्ञानिक क्षमता है जो प्रतिक्रियाशील नाइट्रोजन का आकलन, स्रोत, प्रवाह और भविष्य का आकलन कर सकती है। साथ ही उपाय भी तलाश सकती है। अगर हम बदलते परिदृश्य में अपनी वैज्ञानिक और पर्यावरणीय कूटनीति की ताकत का फायदा उठा लें तो हम विश्व की अगुवाई कर सकते हैं। खोने के लिए हमारे पास काफी कम है और पाने की संभावना बहुत ज्यादा। भारत सरकार ने नीम कोटेड(नीम की परत चढ़ा हुआ) यूरिया को बढ़ावा देकर अनजाने में सही इस दिशा में कदम बढाए हैं। इससे संकट कम किया जा सकता है। नीम कोटेड यूरिया धीमी गति से नाइट्रोजन छोड़ता है और पौधों को इसे अवशोषित करने का समय देता है। इसमें नाइट्रोजन का अधिकतम इस्तेमाल होता है।

सिड रविनूतला की ओर से हार्वर्ड में जमा की गई थीसिस रीडिजाइनिंग इंडियाज यूरिया पॉलिसी के अनुसार, भारत सरकार यूरिया को अनियंत्रित करने की प्रक्रिया में है जिससे फर्टीलाइजर का उत्पादन और उपयोग की दक्षता में इजाफा होगा। इसमें यूरिया को अनियंत्रित करने और किसानों की डिजिटल पहचान के माध्यम से लक्ष्य आधारित अनुदान का लक्ष्य है। इससे जहां सरकार को अनुदान की बचत होती वहीं मिट्टी के स्वास्थ्य और पर्यावरण पर प्रभाव कम करने में भी मदद मिलेगी।

भारत अपनी नाइट्रोजन की दक्षता को बढ़ाकर अनुदान का भार औरपर्यावरण के स्वास्थ्य में सुधार कर सकता है। इसके साथ ही वह नाइट्रोजन प्रबंधन के मामले में वैश्विक विजेता बनकर दुनिया को नेतृत्व भी प्रदान कर सकता है।

बिजली संयंत्र

कोयले से नाइट्रोजन

कोयले से चलने वाले बिजली संयंत्र भी नाइट्रिक ऑक्साइड के रूप में नाइट्रोजन छोड़ते हैं 2001-02 में कोयले और लिग्नाइट से चलने बिजली संयंत्र ने एक मिलियन टन नाइट्रिक ऑक्साइड छोड़ा था। 2009-10 में यह मात्रा बढ़कर 1.6 मिलियन टन हो गई थी। इसकी औसत सालाना बढ़त 5.1 प्रतिशत रही। 2009-10 में भारत के पश्चिमी क्षेत्र से सबसे ज्यादा 35 प्रतिशत नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्सर्जन हुआ था जबकि पूर्वी क्षेत्र से 17 प्रतिशत नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्सर्जन हुआ।